

इत्थं कष्टशतप्रदानचतुरे संसारघोराणवे ज्ञात्वा वै विषयान् विषान्नसदृशान्तान्दुर्जनान्वा भुवि ।
श्रीमत्सारजिनेन्द्रदेवगदितो धर्मः सुशर्मप्रदश्चित्ते निश्चलभावतो बुधजनैराराधनीयः सदा ॥१२॥
इति कथाकोशे विषयलुब्धसंसारिजीवस्य कथा समाप्ता ।

३५. चारुदत्तश्रेष्ठिनः कथा ।

श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज-युग्मं नत्वा सुरार्चितम् । श्रेष्ठिनश्चारुदत्तस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
चम्पाख्ये नगरे राजा शूरसेनो महानभूत् । भानुनामाभवच्छ्रेष्ठी सुभद्रा श्रेष्ठिनी प्रिया ॥२॥
पुत्रार्थिनी कुदेवानां सा करोति स्म सेवनम् । श्रेष्ठिनी न सुतं लेभे नास्ति सिद्धिः कुदेवतः ॥३॥
एकदा श्रीजिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे । नत्वा चारणयोगीन्द्रं सा सुभद्रा जगाद च ॥४॥
ब्रूहि भो भगवन्मेऽत्र तपोलक्ष्मीर्भविष्यति । नैवं वेति समाकर्ण्य मुनीन्द्रो ज्ञानलोचनः ॥५॥
ज्ञात्वा तस्या मनोभावं जगौ भो पुत्रि साम्प्रतम् । मिथ्यादेवस्य सेवां च कृत्वा सम्यक्त्वहानिताम् ॥६॥

इस प्रकार यह संसाररूपी भयंकर समुद्र अत्यन्त दुःखों का देने वाला है और विषयभोग विष मिले भोजन या दुर्जनों के समान कष्ट देने वाले हैं । इस प्रकार संसार की स्थिति देखकर बुद्धिमानों को जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश किए हुए पवित्र धर्म को, जो कि अविनाशी, अनन्तसुख का देने वाला है, स्थिर भावों के साथ हृदय में धारण करना उचित है ॥१२॥

३५. चारुदत्त सेठ की कथा

देवों द्वारा पूजा किए गए जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों को नमस्कार कर चारुदत्त सेठ की कथा लिखी जाती है ॥१॥

जिस समय की यह कथा है, तब चम्पापुरी का राजा शूरसेन था । राजा बड़ा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था । उसके नीतिमय शासन की सारी प्रजा एक स्वर से प्रशंसा करती थी । यही एक इज्जतदार भानुदत्त सेठ रहता था । इसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था । सुभद्रा के कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिए वह सन्तान प्राप्ति की इच्छा से नाना प्रकार के देवी-देवताओं की पूजा किया करती थी, अनेक प्रकार की मान्यताएँ लिया करती थी परन्तु तब भी उसका मनोरथ नहीं फला । सच तो है, कहीं कुदेवों की पूजा-स्तुति से कभी कार्य सिद्ध हुआ है क्या? एक दिन जब वह भगवान् के दर्शन करने को मन्दिर गई तब वहाँ उसने एक चारण मुनि देखे । उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा-प्रभो, क्या मेरा मनोरथ भी कभी पूर्ण होगा? मुनिराज उसके हृदय के भावों को जानकर बोले-पुत्री, इस समय तू जिस इच्छा से दिन-रात कुदेवों की पूजा-मानता किया करती है, वह ठीक नहीं है । उससे लाभ की जगह उल्टी हानि हो रही है । तू इस प्रकार की पूजा मानता द्वारा अपने सम्यक्त्व को नष्ट मत कर । तू विश्वास कर कि संसार में अपने पुण्य-पाप के सिवा और कोई देवी-देवता किसी को कुछ देने-लेने में समर्थ नहीं । अब तक तेरे पाप का उदय था, इसलिए तेरी इच्छा पूरी न हो सकी । पर अब तेरे महान् पुण्यकर्म का

मा कुरु त्वं महान्पुत्रः सत्यं तेऽत्र भविष्यति। तच्छ्रुत्वा सा मुनिं नत्वा प्रहर्षेण गृहं गता ॥७॥
 ततस्तस्याः प्रकुर्वन्त्या सद्धर्मं श्रीजिनोदितम्। कैश्चिद्विनैः सुतो जातश्चारुदत्तो गुणोज्ज्वलः ॥८॥
 नाना महोत्सवैर्नित्यं स वृद्धिं प्राप सदगुणैः। जीवानां कृतपुण्यानां माङ्गल्यं च दिने दिने ॥९॥
 सर्वार्थमातुलस्योच्चैः पुत्रीं मित्रवतीं सतीम्। आग्रहेण कुटुम्बस्य स धीमान्परिणीतवान् ॥१०॥
 तथाप्यसौ विरक्तः सन् चारुदत्तो विचक्षणः। कामसेवां विशुद्धात्मा न करोति कदाचन ॥११॥
 तदा स्वपुत्रस्य मोहेन संगतिं गणिकादिभिः। सुभद्रा कारयामास तस्योच्चैर्लम्पटैर्जनैः ॥१२॥
 ततोसौ चारुदत्तश्च कुसंगान्प्रदोषतः। मांसादिकेऽपि संसक्तः कुसंगः पापकारणम् ॥१३॥
 तथा द्वादशवर्षेषु षोडशस्वर्णकोटयः। वसन्तसेनया सार्द्धं भक्षितस्तेन वेश्याया ॥१४॥

उदय आयेगा, जिससे तुझे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। तू इसके लिए पुण्य के कारण पवित्र धर्म पर विश्वास कर ॥२-७॥

मुनिराज द्वारा अपना भविष्य सुनकर सुभद्रा को बहुत खुशी हुई वह उन्हें नमस्कार कर घर चली गई। अब से उसने सब कुदेवों की पूजा-मानता करना छोड़ दिया। वह अब जिन भगवान् के पवित्र धर्म पर विश्वास कर दान, पूजा, व्रत वगैरह करने लगी। इस दशा में दिन बड़े सुख के साथ कटने लगे। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर मुनिराज के कहे अनुसार उसके पुत्र हुआ। उसका नाम चारुदत्त रखा गया। वह जैसा-जैसा बड़ा होता गया, साथ में उत्तम-उत्तम गुण भी उसमें अपना स्थान बनाते गए। सच है, **पुण्यवानों को अच्छी-अच्छी सब बातें अपने आप प्राप्त होती चली आती हैं** ॥८-९॥

चारुदत्त बचपन ही से पढ़ने-लिखने में अधिक योग्य दिखा करता था। यही कारण था कि उसे चौबीस-पच्चीस वर्ष का होने पर भी किसी प्रकार की विषय-वासना छू तक न गई थी। उसे तो दिन-रात अपनी पुस्तकों से प्रेम था। उन्हीं के अभ्यास, विचार, मनन, चिन्तन में वह सदा मग्न रहा करता था और इसी से बालपन से ही वह बहुधा करके विरक्त रहता था। उसकी इच्छा नहीं थी। कि वह ब्याह कर संसार के माया-जाल में अपने को फँसावे, पर उसके माता-पिता ने उससे ब्याह करने का बहुत आग्रह किया। उनकी आज्ञा के अनुरोध से उसे अपने मामा की गुणवती पुत्री मित्रवती के साथ ब्याह करना पड़ा ॥१०॥

ब्याह हो गया सही, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया और इसीलिए उसने कभी अपनी प्रिया का मुँह तक नहीं देखा। पुत्र की युवावस्था में यह दशा देखकर उसकी माँ को बड़ी चिन्ता हुई चारुदत्त की विषयों की ओर प्रवृत्ति हो, इसके लिए उसने चारुदत्त को ऐसे लोगों की संगति में डाल दिया, जो व्यभिचारी थे। इससे उसकी माँ का अभिप्राय सफल अवश्य हुआ। चारुदत्त विषयों में फँस गया और खूब फँस गया। पर अब वह वेश्या का ही प्रेमी बन गया। उसने तब से घर का मुँह तक नहीं देखा। उसे कोई लगभग बारह वर्ष वेश्या के यहाँ रहते हुए बीत गए। इस अरसे में उसने अपने घर का सब धन भी गवा दिया। चम्पा में चारुदत्त का घर अच्छे धनिकों की गिनती में था, पर अब वह एक साधारण स्थिति का आदमी रह गया। अभी तक चारुदत्त के खर्च के लिए

एकदा चारुदत्तस्य भार्यायाश्च समागतम्। दृष्ट्वाभरणसन्दोहं कुट्टिनी स्वसुतां जगौ ॥१५॥
 अहो पुत्रि त्वया शीघ्र-मिमं त्यक्त्वा धनोज्झितम्। अन्यस्मिन्सधने पुंसि प्रीतिः कार्या च सम्पदे ॥१६॥
 इत्याकर्ण्य तया सोपि वसन्तादिकसेनया। त्यक्तः धनप्रिया लोके वेश्या नैव स्थिरस्थितिः ॥१७॥
 ततश्च चारुदत्तोसौ वञ्चितो भोगतत्स्करैः। स्वभार्यायाः समादाय तदाभरणसञ्चयम् ॥१८॥
 उलूखाख्यस्थदेशस्थमुशिरावर्त्तपत्तनम्। मातुलेन समं गत्वा तस्मात्कर्पासकं मुदा ॥१९॥
 गृहीत्वा ताम्रलिप्ताख्यां पुरीं प्रति चचाल च। महाटव्यां स कर्पासो दग्धो दावाग्निना तदा ॥२०॥
 अहो पुण्यं विना जन्तोर्नोद्यमो सिद्धिदो भवेत्। तस्मात्पुण्यं जिनेन्द्रोक्तं कर्त्तव्यं धीधनैः सदा ॥२१॥
 आपृच्छ्य मातुलं तस्मादुद्वेगात्पीडिताशयः। नाम्ना समुद्रदत्तस्य कस्यचिज्जलयानके ॥२२॥
 स्थित्वाऽऽसौ पवनद्वीपं गत्वा लक्ष्मीकृते ततः। धनं चोपार्ज्य कष्टेन समागच्छन्त्यदा तदा ॥२३॥

उसके घर से नगद रुपया आया करता था। पर अब रुपया लुट जाने से उसकी स्त्री का गहना आने लगा। जिस वेश्या के साथ चारुदत्त का प्रेम था उसकी कुट्टिनी माँ ने चारुदत्त को अब दरिद्र हुआ समझकर एक दिन अपनी लड़की से कहा-बेटी, अब इसके पास धन नहीं रहा, यह भिखारी हो चुका, इसलिए अब तुझे इसका साथ जल्दी छोड़ देना चाहिए। अपने लिए दरिद्र मनुष्य किस काम का। वही हुआ भी। वसन्त सेना ने उसे अपने घर से निकाल बाहर किया। सच है, वेश्याओं की प्रीति धन के साथ ही रहती है। जिसके पास जब तक पैसा रहता है उससे तभी तक प्रेम करती है। जहाँ धन नहीं वहाँ वेश्या का प्रेम भी नहीं। यह देख चारुदत्त को बहुत दुःख हुआ। अब उसे जान पड़ा कि विषय-भोगों में अत्यन्त आसक्ति का कैसा भयंकर परिणाम होता है। वह अब एक पल भर के लिए भी वहाँ पर नहीं ठहरा और अपनी प्रिया के भूषण ले-लिवाकर विदेश चलता बना। उसे इस हालत में माता को अपना कलंकित मुँह दिखलाना उचित नहीं जान पड़ा ॥११-१८॥

यहाँ से चलकर चारुदत्त धीरे-धीरे उलूख देश के उशिरावर्त नाम के शहर में पहुँचा। चम्पा से जब वह रवाना हुआ तब साथ में इसका मामा भी हो गया था। उशिरावर्त में इन्होंने कपास की खरीद की। यहाँ से कपास लेकर ये दोनों ताम्रलिप्ता नामक पुरी की ओर रवाना हुए। रास्ते में ये एक भयंकर वनों में जा पहुँचे। कुछ विश्राम के लिए इन्होंने यहीं डेरा डाल दिया। इतने में एक महा आँधी आई उससे परस्पर की रगड़ से बाँसों में आग लग उठी। हवा चल ही रही थी, सो आग की चिनगारियाँ उड़कर इनके कपास पर जा पड़ीं। देखते-देखते वह सब कपास भस्मीभूत हो गया। सच है, बिना पुण्य के कोई काम सिद्ध नहीं हो पाता है। इसलिए पुण्य कमाने के लिए भगवान् के उपदेश किए मार्ग पर चलना सबका कर्तव्य है। इस हानि से चारुदत्त बहुत ही दुःखी हो गया। वह यहाँ से किसी दूसरे देश की ओर जाने के लिए अपने मामा से सलाहकर समुद्रदत्त सेठ के जहाज द्वारा पवनद्वीप में पहुँचा। यहाँ इसके भाग्य का सितारा चमका। कुछ वर्ष यहाँ रहकर इसने बहुत धन कमाया। इसकी इच्छा अब देश लौट आने की हुई। अपनी माता के दर्शनों के लिए इसका मन बड़ा अधीर हो उठा। इसने चलने की तैयारी कर जहाज में अपना जब धन-असबाब लाद दिया ॥१९-२३॥

पापतः स्फुटितः पोतो हा कष्टं पापचेष्टितम्। एवं सप्तसु वारेषु यानेषु स्फुटितेषु च ॥२४॥
 किञ्चित्पुण्यात्समासाद्य फलकं गुरुवाक्यवत्। समुत्तीर्य समुद्रं स प्राप्तो राजगृहं परम् ॥२५॥
 तत्रैको विष्णुमित्राख्यः परिव्राजकः कुधीः। चारुदत्तं समालोक्य दुष्टात्मा संजगाविति ॥२६॥
 भो पुत्र त्वं समागच्छ भीमाटव्यां प्रवर्तते। नितम्बे पर्वतस्योच्चैर्महाधेनुरसोधिकम् ॥२७॥
 तुभ्यं ददामि तं पूतं येन दारिद्र्यं सञ्चयः। क्षयं याति तवेदानीं तदाकर्ण्य वणिक्सुतः ॥२८॥
 चारुदत्तो वदन्तात कुरु त्वेवं मम ध्रुवम्। धनाशालम्पटा लोके दुर्जनैः के न वञ्चिताः ॥२९॥

जहाज अनुकूल समय देख रवाना हुआ। जैसे-जैसे वह अपनी “स्वर्गादपि गरीयसी” जन्मभूमि की ओर शीघ्र गति से बढ़ा हुआ जा रहा था, चारुदत्त को उतनी ही अधिक प्रसन्नता होती जाती थी। पर यह कोई नहीं जानता कि मनुष्य का चाहा कुछ नहीं होता। होता वही है जो दैव को मंजूर होता है। यही कारण हुआ कि चारुदत्त की इच्छा पूरी न हो पाई और अचानक जहाज किसी से टकराकर फट पड़ा। चारुदत्त का सब माल-असबाब समुद्र के विशाल उदर की भेंट चढ़ा। वह पहले सा ही दरिद्र हो गया। पर चारुदत्त को दुःख उठाते-उठाते बड़ी सहन-शक्ति प्राप्त हो गई थी। एक पर एक आने वाले दुःखों ने उसे निराशा के गहरे गढ़े से निकाल कर पूर्ण आशावादी और कर्तव्यशील बना दिया था। इसलिए अब की बार उसे अपनी हानि का कुछ विशेष दुःख नहीं हुआ। वह फिर कमाने के लिए विदेश चल पड़ा। उसने अब की बार भी बहुत धन कमाया। घर लाते समय फिर भी उसकी पहले सी दशा हुई। इतने में ही उसके बुरे कर्मों का अन्त न हो गया किन्तु ऐसी-ऐसी भयंकर घटनाओं का कोई सात बार उसे सामना करना पड़ा। इसने कष्ट पर कष्ट सहा, पर अपने कर्तव्य से यह कभी विमुख नहीं हुआ। अब की बार जहाज के फट जाने से यह समुद्र में गिर पड़ा। इसे अपने जीवन का भी सन्देह हो गया था। इतने में भाग्य से बहकर आता हुआ एक लकड़े का तख्ता इसके हाथ पड़ गया। उसे पाकर इसके जी में जी आया। किसी तरह यह उसकी सहायता से समुद्र किनारे आ लगा। यहाँ से चलकर यह राजगृह में पहुँचा। यहाँ इसे एक विष्णुमित्र नाम का संन्यासी मिला। संन्यासी ने इसके द्वारा कोई अपना काम निकलता देखकर पहले बड़ी सज्जनता का इसके साथ बरताव किया। चारुदत्त ने यह समझकर कि यह कोई भला आदमी है, अपनी सब हालत उससे कह दी। चारुदत्त को धनार्थी समझकर विष्णुमित्र उससे बोला-मैं समझा, तुम धन कमाने को घर बाहर हुए हो। अच्छा हुआ तुमने अपना हाल सुना दिया। पर सिर्फ धन के लिए अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पड़ेगा। आओ, मेरे साथ आओ, यहाँ से कुछ दूर पर जंगल में एक पर्वत है। उसकी तलहटी में एक कुँआ है। वह रसायन से भरा हुआ है। उससे सोना बनाया जाता है। सो तुम उसमें से कुछ थोड़ा सा रस ले आओ। उससे तुम्हारी सब दरिद्रता नष्ट हो जायेंगी। चारुदत्त संन्यासी के पीछे-पीछे हो लिया। सच है, दुर्जनों द्वारा धन के लोभी कौन-कौन नहीं ठगे गए ॥२४-२९॥

ततस्तेन गिरिं नीत्वा नितम्बस्थितकूपकम्। तत्करे तुम्बकं दत्वा वरत्राबद्धसिक्क्यके ॥३०॥
 धृत्वा प्रवेशितः सोपि रसं गृह्णन्निजेच्छया। तत्रस्थितेन चैकेन निषिद्धश्चारुदत्तकः ॥३१॥
 ततः प्राह सुधीः कस्त्वं सोपि कूपस्थितोऽवदत्। उज्जयिन्यां महापुर्यां धनदत्तोहकं वणिक् ॥३२॥
 गत्वा च सिंहलद्वीपं तस्माद्वाघुटितोम्बुधौ। भग्ने याने धनैर्हीनः परिव्राजककेन तु ॥३३॥
 वञ्चित्वानेन दुष्टेन गृहीत्वा रसतुम्बकम्। कर्त्तित्वा वरत्रां च निक्षिप्तः कूपकेऽशुभात् ॥३४॥
 रसेन भक्षिताः प्राणाः साम्प्रतं यान्ति मे ध्रुवम्। इत्याकर्ण्य जगौ सोपि रसोऽस्मै किं न दीयते ॥३५॥
 कूपस्थोपि जगावेवं यद्यस्मै स न दीयते। तदा पाषाणकैरेष चोपसर्गं करिष्यति ॥३६॥

संन्यासी और उसके पीछे-पीछे चारुदत्त ये दोनों एक पर्वत के पास पहुँचे। संन्यासी ने रस लाने की सब बातें समझाकर चारुदत्त के हाथ में एक तूंबी दी और एक सीके पर उसे बैठाकर कुँए में उतार दिया। चारुदत्त तूंबी में रस भरने लगा। इतने में वहाँ बैठे हुए एक मनुष्य ने उसे रस भरने से रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्य ने कहा तुम डरो मत, तब कुछ सम्हल कर वह बोला-तुम कौन हो और इस कुँए में कैसे आये? कुँए में बैठा हुआ मनुष्य बोला, सुनिए, मैं उज्जयिनी में रहता हूँ। मेरा नाम धनदत्त है। मैं किसी कारण से सिंहलद्वीप गया था। वहाँ से लौटते समय तूफान पड़कर मेरा जहाज फट गया। धन-जन की बहुत हानि हुई मेरे हाथ एक लक्कड़ का पटिया लग जाने से अथवा यों कहिए कि दैव की दया से मैं बच गया। समुद्र से निकलकर मैं अपने शहर की ओर जा रहा था कि रास्ते में मुझे यही संन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहाँ लाया। मैंने कुँए में से इसे रस भरकर ला दिया। इस पापी ने पहले तूंबी मेरे हाथ से ली और फिर आप रस्सी काटकर भाग गया। मैं आकर कुँए में गिरा। भाग्य से चोट तो अधिक न आई, पर दो-तीन दिन इसमें पड़े रहने से मेरी तबियत बहुत बिगड़ गई और अब मेरे प्राण घुट रहे हैं। उसकी हालत सुनकर चारुदत्त को बड़ी दया आई पर वह ऐसी जगह में फँस चुका था, जिससे उसके जिलाने का कुछ यत्न नहीं कर सकता था। चारुदत्त ने उससे पूछा-तो मैं इस संन्यासी को रस भरकर न दूँ? धनदत्त ने कहा-नहीं, ऐसा मत करो; रस तो भरकर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपर से पत्थर वगैरह मारकर बड़ा कष्ट पहुँचायेगा। तब चारुदत्त ने एक बार तो तूंबी को रस से भरकर सीके में रख दिया। संन्यासी ने उसे निकाल लिया। जब चारुदत्त को निकालने के लिए उसने फिर सीका कुँए में डाला। अब की बार चारुदत्त ने स्वयं सीके पर न बैठकर बड़े-बड़े वजनदार पत्थरों को उसमें रख दिया। संन्यासी उस पत्थर भरे सीके पर चारुदत्त को बैठा समझकर, जब सीका आधी दूर आया तब उसे काटकर आप चलता बना। चारुदत्त की जान बच गई। उसने धनदत्त से कहा तुमने मुझे जीवनदान दिया और इसके लिए मैं तुम्हारा जन्म-जन्म में ऋणी रहूँगा। हाँ और यह तो कहिए कि इससे निकलने का भी कोई उपाय है क्या? धनदत्त बोला-यहाँ रस पीने को प्रतिदिन एक गो आया करती है। तब आज तो वह चली गई कल सबेरे वह फिर आवेगी तुम उसकी पूँछ पकड़कर निकल जाना। इतना कहकर वह बोला-अब मुझसे बोला नहीं जाता। मेरे प्राण बड़े संकट में हैं। चारुदत्त

तच्छ्रुत्वा चारुदत्तश्च सुधीर्बुद्धिप्रपञ्चतः। तस्मै पापात्मने दत्त्वा तुम्बकं रससंभृतम् ॥३७॥
 धृत्वा द्वितीयवेलायां सिक्मे पाषाणकं पुनः। दत्त्वा तस्मै स्वयं तत्र कूपेऽसौ यत्नतः स्थितः ॥३८॥
 स परिव्राजकश्चापि समाकृष्य वरत्रिकाम्। कर्त्तित्वा रसमादाय पापिष्ठः स्वगृहं गतः ॥३९॥
 ततोऽसौ चारुदत्तेन कूपस्थो भणितो मुदा। त्वया मे जीवितं दत्तं तवेदानीं ददाम्यहम् ॥४०॥
 सुगतेः साधनोपायं जिनेन्द्रैः परिकीर्तितम्। इत्युक्त्वा च तथा तस्मै स्वर्गमोक्षसुखप्रदान् ॥४१॥
 सारपञ्चनमस्कारान्संन्यासेन समन्वितान्। दत्त्वा तेन पुनः पृष्ठो भक्त्यासौ कूपसंस्थितः ॥४२॥
 कोपि निःसरणोपायो वर्तते ब्रूहि मे सुधीः। तन्निशम्य स च ग्राह्यं शृणु त्वं भो विचक्षण ॥४३॥
 अद्य पीत्वा रसं गोधा गता प्रातः समेष्यति। पुच्छं तस्या गृहीत्वा त्वं गच्छ स्वेच्छाशयः स्वयम् ॥४४॥
 इति श्रुत्वा प्रभातेऽसौ चारुदत्तो गुणोज्ज्वलः। तथा निर्गत्य कूपाच्च गतोऽटव्यां सुधीरधीः ॥४५॥
 महाटवीं परित्यज्य ततो गच्छन्निजेच्छया। दृष्टोऽसौ रुद्रदत्ताख्यमातुलेन मनोहरः ॥४६॥
 चारुदत्त समागच्छ रत्नद्वीपं सुखप्रदम्। शीघ्रमावां प्रगच्छाव-स्तेनाऽसौ भणितो मुदा ॥४७॥
 गन्तुकामौ ततस्तौ द्वौ रत्नद्वीपं धनाशया। छागपृष्ठं समारुह्य चलितौ छागमार्गतः ॥४८॥
 पर्वतोपरि गत्वासौ रुद्रदत्तोवदत्तदा। पापी रौद्राशयश्चेति शृणु त्वं चारुदत्त भो ॥४९॥
 हत्वा छागौ परावृत्य चर्मसं स्थीयतेऽत्र च। भेरुण्डपक्षिणौ शीघ्रं समागत्य पलाशया ॥५०॥
 आवां चंच्वा समादाय रत्नद्वीपं प्रयाष्यतः। इत्युच्चैः प्रेरितश्चापि तेनासौ करुणापरः ॥५१॥

को यह देख बड़ा दुःख हुआ कि वह अपने उपकारी की कुछ सेवा नहीं कर पाया। उससे और तो कुछ नहीं बना, पर इतना तो उसने तब भी किया कि धनदत्त को पवित्र जिनधर्म का उपदेश देकर, जो कि उत्तम गति का साधन है, पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया और साथ ही संन्यास भी लिया दिया ॥३०-४२॥

सबेरा हुआ। सदा की भाँति आज भी गो रस पीने के लिए आई रस पीकर जैसे ही वह जाने लगी, चारुदत्त ने उसकी पूँछ पकड़ ली। उसके सहारे वह बाहर निकल आया। यहाँ से इस जंगल को लांघकर यह एक ओर जाने लगा। रास्ते में इसकी अपने मामा रुद्रदत्त से भेंट हो गई। रुद्रदत्त ने चारुदत्त का सब हाल जानकर कहा—तो चलिए अब हम रत्नद्वीप में चलें। वहाँ अपना मनोरथ अवश्य पूरा होगा। धन की आशा से ये दोनों अब रत्नद्वीप जाने को तैयार हुए। रत्नद्वीप जाने के लिए पहले एक पर्वत पर जाना पड़ता था और पर्वत पर जाने का जो रास्ता था, वह बहुत सँकरा था। इसलिए पर्वत पर जाने के लिए इन्होंने दो बकरे खरीद लिए और उन पर सवार होकर ये रवाना हो गए। जब ये पर्वत पर कुशलपूर्वक पहुँच गये तब पापी रुद्रदत्त ने चारुदत्त से कहा—देखो, अब अपने को यहाँ पर इन दोनों बकरों को मारकर दो चमड़े की थैलियाँ बनानी चाहिए और उन्हें उलटकर उनके भीतर घुस दोनों का मुँह सी लेना चाहिए। मांस के लोभ से यहाँ सदा ही भेरुण्ड-पक्षी आया करते हैं। सो वे अपने को उठा ले जाकर उस पार रत्नद्वीप ले जाएँगे। वहाँ जब वे हमें खाने लगे तब इन थैलियों को चीरकर हम बाहर हो जायेंगे। मनुष्य को देखकर पक्षी उड़ जाएँगे और ऐसा करने से बहुत सीधी तरह अपना काम बन जायेगा ॥४३-५१॥

चारुदत्तो निजं छागं नैव मारयति स्म च। न कुर्वन्ति दुराचारं सन्तः कस्मादपि ध्रुवम् ॥५२॥
 सोपि छागस्ततस्तेन रुद्रदत्तेन मारितः। ये दुष्टा निर्दयास्तेऽत्र किं न कुर्वन्ति पातकम् ॥५३॥
 चारुदत्तस्तदा तस्मै छागायोच्चैः सुखप्रदान्। सारपञ्चनमस्कारान्संन्यासं च प्रदत्तवान् ॥५४॥
 धर्मिणो येऽत्र वर्तन्ते ज्ञातश्रीजिनसद्गिरः। नित्यं परोपकाराय सन्ति ते परमार्थतः ॥५५॥
 छागयोश्चर्मभस्त्रायां तौ प्रविश्य स्थितौ ततः। रत्नद्वीपात्समागत्य तदा भेरुण्डपक्षिणौ ॥५६॥
 तौ समादाय चञ्चुभ्यां रत्नद्वीपं विनिर्गतौ। द्वयोर्भेरुण्डयोर्युद्धे नभोभागे स्वपापतः ॥५७॥
 दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा। मृत्वा च दुर्गतिं प्राप क्व भवेत्पापिनां शुभम् ॥५८॥
 चारुदत्ताश्रितां भस्त्रां रत्नद्वीपे मनोहरे। रत्नचूलगिरिं नीत्वा भेरुण्डस्तां विदार्य च ॥५९॥
 चारुदत्तं समालोक्य भीत्वा पक्षी स नष्टवान्। लोके पुण्यवतां पुंसां दुष्टाश्चापि हितङ्करा ॥६०॥

चारुदत्त ने रुद्रदत्त की पापमयी बात सुनकर उसे बहुत फटकारा और वह साफ इनकार कर गया कि मुझे ऐसे पाप द्वारा प्राप्त किए धन की जरूरत नहीं। सच है—दयावान् कभी ऐसा अनर्थ नहीं करते। रात को ये दोनों सो गए। चारुदत्त को स्वप्न में भी ख्याल न था कि रुद्रदत्त सचमुच इतना नीच होगा और इसीलिए वह निःशंक होकर सो गया था। जब चारुदत्त को खूब गाढ़ी नींद आ गई तब पापी रुद्रदत्त चुपके से उठा और जहाँ बकरें बँधे थे वहाँ गया। उसने पहले अपने बकरे को मार डाला और चारुदत्त के बकरे का भी उसने आधा गला काट दिया होगा कि अचानक चारुदत्त की नींद खुल गई। रुद्रदत्त को अपने पास सोया न पाकर उसका सिर ठनका। वह उठकर दौड़ा और बकरों के पास पहुँचा। जाकर देखता है तो पापी रुद्रदत्त बकरे का गला काट रहा है। चारुदत्त को काटो तो खून नहीं। वह क्रोध के मारे भरा गया। उसने रुद्रदत्त के हाथ से छुरी तो छुड़ाकर फेंकी और उसे खूब ही सुनाई सच है, कौन ऐसा पाप है, जिसे निर्दयी पुरुष नहीं करते?

उस अधमरे बकरे को टगर-टगर करते देखकर दया से चारुदत्त का हृदय भर आया। उसकी आँखों से आँसुओं की बूँदें टपकने लगीं। पर वह उसके बचाने का प्रयत्न करने के लिए लाचार था। इसलिए कि वह प्रायः काटा जा चुका था। उसकी शांति के साथ मृत्यु होकर वह सुगति लाभ करे, इसके लिए चारुदत्त ने इतना अवश्य किया कि उसे पंच नमस्कार मंत्र सुनाकर संन्यास दे दिया। जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश का रहस्य समझने वाले हैं, उनका जीवन सच पूछो तो केवल परोपकार के लिए ही होता है ॥५२-५५॥

चारुदत्त ने बहुतेरा चाहा कि मैं पीछे लौट जाऊँ, पर वापस लौटने का उसके पास कोई उपाय न था। इसलिए अत्यन्त लाचारी की दशा में उसे भी रुद्रदत्त की तरह उस थैली की शरण लेनी पड़ी। उड़ते हुए भेरुण्ड पक्षी पर्वत पर दो मांस-पिण्ड पड़े देखकर आए और उन दोनों को चोंचों से उठा चलते बने। रास्ते में उनमें परस्पर लड़ाई होने लगी। परिणाम यह निकला कि जिस थैली में रुद्रदत्त था, वह पक्षी की चोंच से छूट पड़ी। रुद्रदत्त समुद्र में गिरकर मर गया। मरकर वह पाप के फल से

तत्रातापेन योगस्थं रत्नचूलगिरौ मुनिम्। दृष्ट्वा तत्पादयोर्लग्नश्चारुदत्तोतिभक्तितः ॥६१॥
 पूर्णयोगस्तदा प्राह मुनीन्द्रः शुद्धमानसः। अस्ति भो कुशलं चारुदत्त ते गुणमण्डितः ॥६२॥
 तदाकर्ण्य मुनेर्वाक्यं सन्तुष्टश्चारुदत्तवाक्। क्व भो मुने त्वया दृष्टः सेवकश्चेत्यहं जगौ ॥६३॥
 तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह शृणु त्वं भानुनन्दन। अमिताख्यो महाविद्याधरोहं चैकदा मुदा ॥६४॥
 चम्पायां कदलीवृक्षवने शोभासमन्विते। क्रीडां कर्तुं गतो धीर वसन्तप्रियया युतः ॥६५॥
 धूमसिंहखगः पापी तत्रागत्य दुराशयः। वसन्तश्रियमालोक्य महाकन्दर्पपीडितः ॥६६॥
 कीलित्वा मां छलेनोच्चैः पादपे निजविद्यया। तां समादाय मे भार्या नभोभागे गतो द्रुतम् ॥६७॥
 तस्मिन्नेव क्षणे वत्स मम पुण्यप्रभावतः। क्रीडितुं त्वमपि प्राप्तः सूत्रोत्कृष्टदयानिधिः ॥६८॥
 त्वां विलोक्य मया प्रोक्तं तस्मिन्मे करके सुधीः। तिस्रश्चौषधयः सन्ति दृष्टविद्याक्षयप्रदाः ॥६९॥

कुगति में गया। ठीक भी है, पापियों की कभी अच्छी गति नहीं होती। चारुदत्त की थैली को जो पक्षी लिए था, उसने उसे रत्नद्वीप के एक सुन्दर पर्वत पर ले जाकर रख दिया। इसके बाद पक्षी ने उसे चोंच से चीरना शुरू किया। उसका कुछ भाग चीरते ही उसे चारुदत्त देख पड़ा। पक्षी उसी समय डरकर उड़ भागा। सच है, **पुण्यवानों का कभी-कभी तो दुष्ट भी हित करने वाले हो जाते हैं।** जैसे ही चारुदत्त थैली के बाहर निकला कि धूप में मेरु की तरह निश्चल खड़े मुनिराज को देखकर चारुदत्त की उन पर बहुत श्रद्धा हो गई। चारुदत्त उनके पास गया और बड़ी भक्ति से उसने उनके चरणों में अपना सिर नवाया। मुनिराज का ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्त से कहा—चारुदत्त, क्यों तुम अच्छी तरह तो हो। न? मुनि द्वारा अपना नाम सुनकर चारुदत्त को कुछ सन्तोष तो इसलिए अवश्य हुआ कि एक अत्यन्त अपरिचित देश में उसे कोई पहचानता भी है, पर इसके साथ ही उसके आश्चर्य का भी कुछ ठिकाना न रहा। वह बड़े विचार में पड़ गया कि मैंने तो कभी इन्हें कहीं देखा नहीं, फिर इन्होंने ही मुझे कहाँ देखा था! अस्तु, जो हो, इन्हीं से पूछता हूँ कि ये मुझे कहाँ से जानते हैं। वह मुनिराज से बोला—प्रभो, मालूम होता है आपने मुझे कहीं देखा है, बतलाइए तो आपको मैं कहाँ मिला था? मुनि बोले—सुनो, मैं एक विद्याधर हूँ! मेरा नाम अमितगति है। एक दिन मैं चम्पापुरी के बगीचे से अपनी प्रिया के साथ सैर करने को गया हुआ था। उसी समय एक धूमसिंह नाम का विद्याधर वहाँ आ गया। मेरी सुन्दरी स्त्री को देखकर उस पापी की नियत डगमगी। काम से अन्धे हुए उस पापी ने अपनी विद्या के बल से मुझे एक वृक्ष में कील दिया और मेरी प्यारी को विमान में बैठाकर मेरे देखते-देखते आकाश मार्ग से चल दिया। उस समय मेरे कोई ऐसा पुण्यकर्म का उदय आया तो तुम उधर आ निकले। तुम्हें दयावान् समझकर मैंने तुमसे इशारा करके कहा—वे औषधियाँ रखी हैं, उन्हें पीसकर मेरे शरीर पर लेप दीजिए। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर वैसा ही किया। उससे दुष्ट विद्याओं का प्रभाव नष्ट हुआ और मैं उन विद्याओं के पंजे से छूट गया। जैसे गुरु के उपदेश से जीव, माया, मिथ्या की कील से छूट जाता है। मैं उसी समय दौड़ा हुआ कैलाश

ताः पिष्ट्वा त्वं प्रयत्नेन देहि मे वपुषि ध्रुवम्। भवाम्युत्कीलितो येन भो मित्रेति गुणाकरः ॥७०॥
 तासु त्वया प्रदत्तासु ममाङ्गे भूरियन्ततः। निःशल्योहमभूवं हि प्राणी वा सद्गुरोर्मतात् ॥७१॥
 ततः कैलासनामानं गत्वाहं वेगतो गिरिम्। धूमसिंहं खगं जित्वा गृहीत्वा कामिनीं निजाम् ॥७२॥
 पश्चादागत्य भक्त्या त्वं भणितोसि मया मुदा। वरं प्रार्थय भो मित्र मनोभीष्टमिति स्फुटम् ॥७३॥
 त्वया प्रोक्तं न मे कार्यं वरेणेति महाधिया। कृत्वा परोपकारं हि सन्तो वाञ्छति किं धनम् ॥७४॥
 ततोऽहं दक्षिणश्रेण्यां शिवमन्दिरपत्तने। राज्यं भुक्त्वा कियत्कालं नाना भोगैः समन्वितम् ॥७५॥
 त्रिधा वैराग्यमासाद्य क्षिप्त्वा राज्यं सुपुत्रयोः। नाम्ना सिंहयशश्चारुवराहग्रीवसंज्ञयोः ॥७६॥
 जैनीं दीक्षां समादाय भवभ्रमणनाशिनीम्। चारणर्द्धिमुनिर्भूत्वा करोम्यत्र महातपः ॥७७॥
 इत्यादिकं मुनिप्रोक्तं श्रुत्वासौ परमादरात्। चारुदत्तः सुधीस्तुष्टो यावत्तत्र सुखस्थितः ॥७८॥
 अत्रान्तरे समायातौ वन्दनार्थं खगाधिपौ। स्वपुत्रौ प्रति योगीन्द्र-श्चारुदत्तकथां जगौ ॥७९॥
 तस्मिंश्चापि क्षणे छाग-चरदेवेन धीमता। तत्रागत्य प्रणामश्च चारुदत्ताङ्घ्रिके कृतः ॥८०॥
 तेनोक्तं चारुदत्तेन नैव युक्तं सुरोत्तम। कर्तुं मे ते नमस्कारं विद्यमाने महामुनौ ॥८१॥
 तच्छ्रुत्वा स सुरः प्राह शृणु त्वं भो सुधीः पुरा। पापिना रुद्रदत्तेन मारितायाजकाय मे ॥८२॥
 संन्यासपूर्वकं दत्ता त्वया पञ्चनमस्कृतिः। तत्प्रभावेन सौधर्मे देवो जातोऽहमद्भुतः ॥८३॥
 तस्मात्त्वमेव मे स्वामिन्गुरुः सन्मार्गदर्शकः। इत्युक्त्वा स ततो देवो महाधर्मानुरागतः ॥८४॥

पर्वत पर पहुँचा और धूमसिंह को उसके कर्म का उचित प्रायश्चित्त देकर उससे अपनी प्रिया को छुड़ा लाया। फिर मैंने आप से कुछ प्रार्थना की कि आप जो इच्छा हो वह मुझसे माँगे, पर आप मुझ से कुछ भी लेने के लिए तैयार नहीं हुए। सच तो यह है कि महात्मा लोग दूसरों का भला किसी प्रकार की आशा से करते ही नहीं इसके बाद मैं आपसे विदा होकर अपने नगर में आ गया। मैंने इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक और राज्य किया, राज्यश्री का खूब आनन्द लूटा। बाद आत्मकल्याण की इच्छा से पुत्रों को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षा ले गया, जो कि संसार का भ्रमण मिटाने वाली है। चारणर्द्धि के प्रभाव से मैं यहाँ आकर तपस्या कर रहा हूँ। मेरा तुम्हारे साथ पुराना परिचय है, इसलिए मैं तुम्हें पहचानता हूँ। सुनकर चारुदत्त बहुत खुश हुआ। वह जब तक वहाँ बैठा रहा, इसी बीच में इन मुनिराज के दो पुत्र इनकी पूजा करने को वहाँ आए। मुनिराज ने चारुदत्त का कुछ हाल उन्हें सुनाकर उसका उनसे परिचय कराया। परस्पर में मिलकर इन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े ही समय के परिचय से इनमें अत्यन्त प्रेम बढ़ गया ॥५६-७९॥

इसी समय एक बहुत खूबसूरत युवा यहाँ आया। सबकी दृष्टि उसके दिव्य तेज की ओर जा लगी। उस युवा ने सबसे पहले चारुदत्त को प्रणाम किया। यह देख चारुदत्त ने उसे ऐसा करने से रोककर कहा—तुम्हें पहले गुरु महाराज को नमस्कार करना उचित है। आगत युवा ने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा आधा गला काट चुका होगा कि उसी समय मेरे भाग्य से आपकी नींद खुल गई आपने आकर मुझे नमस्कार मंत्र सुनाया और साथ ही संन्यास दे

वस्त्राभरणसन्दोहै-श्चारुदत्तं गुणोज्ज्वलम्। समभ्यर्च्य पुनर्नत्वा स्वर्गलोकं गतो मुदा ॥८५॥
 परोपकारिणो लोके सन्ति ये बुधसत्तमाः। कैः सुराद्यैर्न पूज्यन्ते महाभक्तिभरैश्च ते ॥८६॥
 ततः सिंहयशाः सोपि वराहग्रीवसंज्ञकः। विद्याधरेशिनौ तौ द्वौ नत्वा तं मुनिनायकम् ॥८७॥
 चारुदत्तवणिक्पुत्रं नाना रत्नादिभिर्युतम्। नीत्वा चम्पापुरीं भूत्या भक्त्या संस्थाप्य सौख्यतः ॥८८॥
 तं प्रणम्य समापृच्छ्य स्वस्थानं जग्मतुः सुखम्। अहो पुण्येन जीवानां किं न जायेत भूतले ॥८९॥
 तस्माच्छ्रीमज्जिनेन्द्रोक्तः सद्धर्मोसौ चतुर्विधः। दानपूजाव्रतैः शीलैः पालनीयो बुधैः श्रिये ॥९०॥
 भानुः श्रेष्ठी सुभद्रा सा चारुदत्तागमे तदा। अन्ये चम्पापुरीलोकाः प्रीतिं प्राप्ता महाद्भुताम् ॥९१॥
 चारुदत्तः सुधीश्चापि भुक्त्वा भोगान्स्वपुण्यतः। समाराध्य जिनेन्द्रोक्तं धर्मशर्माकरं चिरम् ॥९२॥
 ततो वैराग्यमासाद्य सुन्दराख्यसुताय च। दत्त्वा श्रेष्ठिपदं पूतं दीक्षां जैनैश्वरीं श्रितः ॥९३॥

दिया। मैं शान्त भावों से मरकर मंत्र के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। इसलिए मेरे गुरु तो आप ही हैं-आप ही ने मुझे सन्मार्ग बतलाया है। इसके बाद सौधर्म-देव धर्म-प्रेम से बहुत सुन्दर-सुन्दर और मूल्यवान् दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्त को भेंटकर और उसे नमस्कार कर स्वर्ग चला गया। सच है, जो परोपकारी हैं उनका सब ही बड़ी भक्ति के साथ आदर सत्कार करते हैं ॥८०-८६॥

इधर ये विद्याधर सिंहयश और वारहग्रीव मुनिराज को नमस्कार कर चारुदत्त से बोले चलिए हम आपको आपकी जन्मभूमि चम्पापुरी में पहुँचा आवें। इससे चारुदत्त को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह जाने को सहमत हो गया। चारुदत्त ने इसके लिए उनसे बड़ी कृतज्ञता प्रकट की। उन्होंने चारुदत्त को उसके सब माल-असबाब सहित बहुत जल्दी विमान द्वारा चम्पापुरी में ला रखा। इसके बाद वे उसे नमस्कार कर और आज्ञा लेकर अपने स्थान लौट गए। सच हैं, पुण्य से संसार में क्या नहीं होता! और पुण्य प्राप्ति के लिए जिनभगवान् के द्वारा उपदेश किए दान, पूजा, व्रत शीलरूप चार प्रकार पवित्र धर्म का सदा पालन करते रहना चाहिए ॥८७-९०॥

अचानक अपने प्रिय पुत्र के आ जाने से चारुदत्त के माता-पिता को बड़ी खुशी हुई उन्होंने बारबार उसे छाती से लगाकर वर्षों से वियोगाग्नि से जलते हुए अपने हृदय को ठंडा किया। चारुदत्त की प्रिया मित्रवती के नेत्रों से दिन-रात बहती हुई वियोग-दुःखाश्रुओं की धारा और आज प्रिय को देखकर बहने वाली आनन्दाश्रुओं की धारा अपूर्व समागम हुआ। उसे जो सुख आज मिला, उसकी समानता में स्वर्ग का दिव्य सुख तुच्छ है। बात ही बात में चारुदत्त के आने के समाचार सारी पुरी में पहुँच गया और उससे सभी को आनन्द हुआ ॥९१॥

चारुदत्त एक समय बड़ा धनी था। अपने कुकर्मों से वह पथ-पथ का भिखारी बना। पर जब से उसे अपनी दशा का ज्ञान हुआ तब से उसने केवल कर्तव्य को ही अपना लक्ष्य बनाया और फिर कर्मशील बनकर उसने कठिन से कठिन काम किया। उसमें कई बार उसे असफलता भी प्राप्त हुई,

संन्यासविधिना कालं कृत्वासौ शल्यवर्जितः। स्वर्गलोकं समासाद्य देवो जातो महर्द्धिकः ॥१४॥
 तत्र भोगान्सुभुञ्जानः स्वर्गलोकसमुद्भवान्। कुर्वन्यात्रां जिनेन्द्राणां महास्वर्णाचलादिषु ॥१५॥
 साक्षात्तीर्थकरानुच्चैः केवलज्ञानलोचनान्। चारुदत्तचरो देवः समभ्यर्चत्सुभक्तितः ॥१६॥
 शृण्वन् जैनेश्वरीं वाणी-माप्तेभ्यः शर्मदायिनीम्। इत्यादिधर्मसंसक्तः स देवः सुखतःस्थितः ॥१७॥
 श्रीमत्सारसुरेन्द्रचन्द्रनिकरैर्नागेन्द्रसत्खेचरैः षट्खण्डाधिपभूचरैश्च नितरां भक्त्या सदाभ्यर्चितम्।
 धर्मं श्रीजिनभाषितं शुचितरं स्वर्गापवर्गप्रदं नित्यं सारसुखाय शर्मनिलयं सन्तः श्रयन्त्वञ्जसा ॥१८॥
 इति कथाकोशे चारुदत्तकथा समाप्ता।

३६. पाराशरकथा

नत्वा श्रीमज्जिनं देवं ज्ञातुं चान्यमतं सताम्। वक्ष्ये पाराशरस्याहं कुमुनेर्लौकिकी कथा ॥१॥
 हस्तिनागपुरे पूर्वं गंगादिभटधीवरः। एकदासौ महामत्सीं धृत्वा जालेन पापधीः ॥२॥
 तां निहन्ति यदा तावत्तस्याः कुक्षेर्विनिर्गता। कन्यासद्रूपसंयुक्ता महादुर्गन्धविग्रहा ॥३॥
 तेन सत्यवतीत्युक्त्वा पोषिता धीवरेण च। हा कष्टं दुर्दृशां शास्त्रं सर्वमेतदसत्यकम् ॥४॥

पर वह निराश नहीं हुआ और काम करता ही चला गया। अपने उद्योग से उसके भाग्य का सितारा फिर चमक उठा और वह आज पूर्ण तेज प्रकाश कर रहा है। इसके बाद चारुदत्त ने बहुत वर्षों तक खूब सुख भोगा और जिनधर्म की भी भक्ति के साथ उपासना की। अन्त में उदासीन होकर वह अपनी जगह पर अपने सुन्दर नाम के पुत्र को नियुक्त कर आप दीक्षा ले ली। मुनि होकर उसने खूब तप किया और आयु के अन्त में संन्यास सहित मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग लाभ किया। स्वर्ग में वह सुख के साथ रहता है, अनेक प्रकार के उत्तम से उत्तम भोगों को भोगता है, सुमेरु और कैलाश पर्वत आदि स्थानों के जिनमन्दिरों की यात्रा करता है, विदेहक्षेत्र में जाकर साक्षात् तीर्थकर केवली भगवान् की स्तुति-पूजा करता है और उनका सुख देने वाला पवित्र धर्मोपदेश सुनता है। मतलब यह कि उसका प्रायः समय धर्म साधन में बीतता है और इसी जिनभगवान् के उपदेश किए निर्मल धर्म की इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं, यही धर्म स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला है। इसलिए यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुख की चाह है तो तुम भी इसी धर्म का आश्रय लो ॥१२-१८॥

३६. पाराशर मुनि की कथा

जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर अन्यमतों की असत्य कल्पनाओं का सत्पुरुषों को ज्ञान हो, इसलिए उन्हीं के शास्त्रों में लिखी हुई पाराशर नामक एक तपस्वी की कथा यहाँ लिखी जाती है ॥१॥

हस्तिनापुर में गंगभट नाम का एक धीवर रहा करता था। एक दिन वह पाप-बुद्धि एक बड़ी भारी मछली को नदी से पकड़कर लाया। घर लाकर उस मछली को जब उसने चीरा तो उसमें से एक सुन्दर कन्या निकली। उसके शरीर से बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी। उस धीवर ने उसका नाम सत्यवती रखा। वही उसका पालन-पोषण भी करने लगा। पर सच पूछो तो यह बात सर्वथा-असंभव है। कही